UNIVERSAL LIBRARY

OU_182246

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81·6/S61As Accession No. G.H. 2261(a)

Author सिंह, महेश्वर प्रसाद।

Title अश्रु-हास। 1954

This book should be returned on or before the date last marked below.

अश्रु-हास

श्री महेश्वर प्रसाद सिंह

प्रकाशक

शतदल

पो०:—कुवाँड़ी गोला, पूर्णिया

प्रथम संस्करण

मूल्य—१)

मुद्रक
दि युनाइटेड प्रेस लि०,
भागलपुर १४–१९५४।

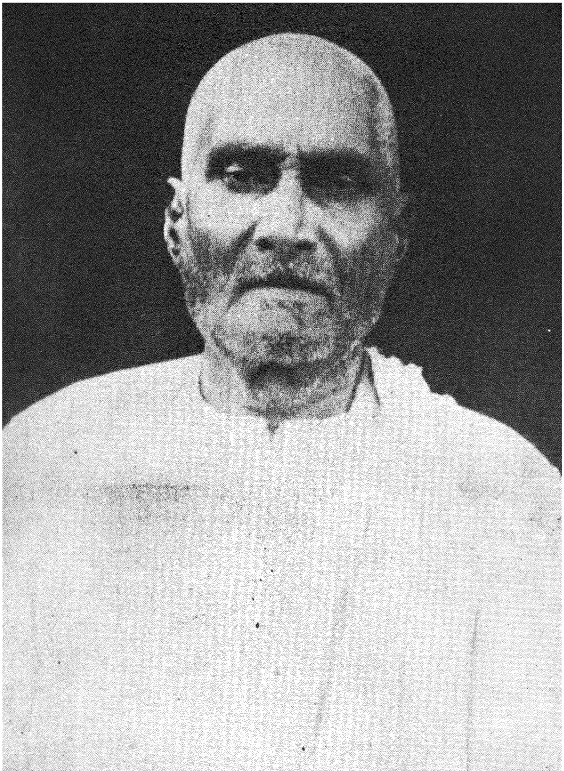

कवि-पिता
एक दार्शनिक

स्वर्गीय पूज्य पिता के
पद-पद्मों में
सादर
समर्पित

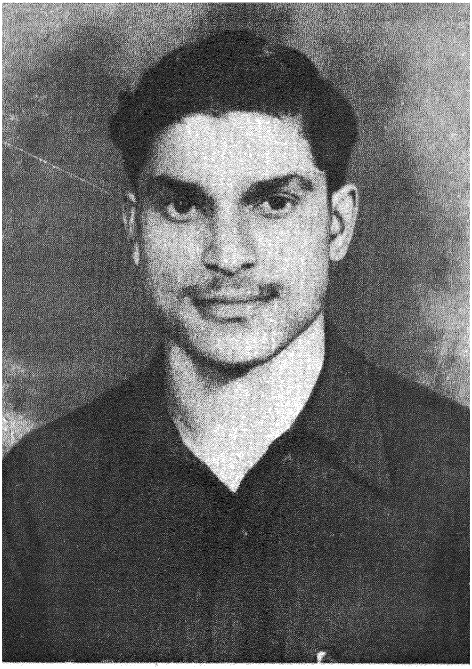

कवि

[जन्म स्थान—कुवाँड़ी, पूर्णियाँ]

'अश्रु-हास'-दर्शन

कविता परमात्मा की देन है—वरदान है। कवि यह वरदान लेकर भूमितल पर उतरता है और सृष्टि को अपना संदेश दे उसकी मंगलकामना करता है। कवि का यह कर्म—उसका यह पथ—शूल-फूल से—'अश्रु-हास' से आच्छादित रहता है। वैषम्य की इस धूप-छांह में वह सर्वत्र उत्सुकता भरी आंखों से—स्नेहभरी चाहों से देखता है और अंत में कह उठता है:—

रे! केवल आँसू या कि हास
जग को कर देता शुष्क, विरस;
पर अश्रु हास के मिश्रण से
है बना आज यह मधुर-सरस!

वह 'सारे क्षितिज पर' 'गरजते' 'काले पयोधरों' के बीच 'कड़कती बिजलियों' का गर्जन सुनता है और प्रार्थनालीन हो आर्त्तता प्रकट करता है:—

हूँ तृषित मैं युग-युगों से
और मत व्याकुल करो हे!
मुक्त बरसो सजल जलधर
प्यार से मुझको भरो हे!

सहसा सांध्य वेला में 'शशि-किरण धवल' खेलने लगती है—'उन्मुक्त पवन' 'पुष्प गंध ले' 'उर में गुद्-गुद कम्पन' भर गा उठता है और फलस्वरूपः—

····दीप-दीप्त प्रासाद-कुटी से,
चला भाग कुल अंधकार;
षोड़शी सेज सजती प्रिय की
उल्लसित हृदय से कर सिंगार!

फिर क्या? कहीं 'सुषमा की मुरली' बजती है—कहीं 'जिज्ञासा' का संकेत होता है—कहीं 'रिमझिम-रिमझिम सावन' में संगीत झूमते हैं और उसे मालूम पड़ता हैः—

आज कोई छिप हृदय में गीत सुन्दर गा रही है
वर्ष की सोई व्यथा को अग्नि-सी सुलगा रही है

जीवन 'मिलन-बिछुड़न' का यही अनोखा क्रम है। इस अवस्था में जब वह 'आह्वान' सुनता है तब उसे यह सोचने में देर नहीं लगती कि उसकी राह 'कितनी दूर है' और वह 'कैसे भूल' पड़ा। ठीक इसी समय 'नई किरण' 'यौवन का संदेश' लेकर आती है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि 'कण-कण' में 'नई चेतना' जाग रही है।

वह 'अन्वेषण' करता है और उसमें गतिशील रहता है। इसी अन्वेषण में उसकी भेंट भेदभरी 'सरला' से होती है और उससे वह पूछता हैः—

सरले ! तुम सुन्दर हो, या हो
सुन्दरता की साकार मूर्त्ति ?
सिरजा तुमको किस विधि ने री !
करने किस अभाव की पूर्त्ति ?

कवि की यह गुत्थी सुलझनेवाली नहीं है। उसको यही पता नहीं चलता कि वह 'भूल' है या संसार 'बौराया' है। इसकी सुन्दरता में मस्त उसी को वह विश्वाधार मान लेता है। किंतु परमात्मा का वरपूत अंधकार को पार कर गुनगुनाता है:—

क्या इस सुन्दरता में सखि !
तुम सब दिन सदा अमर हो ?
सखि ! सुन्दर-सुन्दर-सुन्दर
सचमुच, कितनी सुन्दर हो !

वह उसमें भुलाना चाह कर भी नहीं भुला सकता है। क्योंकि वह युग-युगान्तर पार करता इस 'आनन्द-अवसाद' से परिचित है। सब कुछ खोने के बाद भी उसके 'आकुल जीवन की आश'—'सर्वस्व' 'एक आंसू ही' है। इसी से उसे कुछ 'शांति' मिलती है और वह अपने पथ पर बढ़ता जाता है।

कवि का यह शिशिर और 'मधुमास' का जीवन—'गीत' और गान का जीवन—'हर्ष' और 'विषाद' का जीवन कभी 'दीपावली' मनाता है और कभी 'कुसुम' और 'चांदनी' का 'व्यवसाय' करता है, जब कि सहसा वह अनुभव करता है:—

कौन दिल दहला रहा है ?

कवि-जीवन का यह अध्याय समाप्त होता है। 'नव जागरण' आता है। उसे लगता है:—

नवल प्रभात आ गया लिये नवीन जागरण
उठा क्षितिज से झांकती उषा गहन तमावरण

फिर क्या वह 'प्रणय निमंत्रण' पाकर 'उत्कर्ष की चोटी' पर चढ़ना चाहता है और दूसरों को भी चढ़ाना चाहता है। किंतु यह क्या ? वह 'आत्म-दाह' में जलने लगता है। 'हृदय और मस्तिष्क' की 'दुनिया' 'अलग-अलग' बस जाती है। वह देखता है:—

क्षितिज के पार—नियति की ओर—
जा रहा उड़ता खग अनजान !

वह उसके साथ चलता है।
किंतु बाद में आकाश के तारे पूछते हैं :—

पान्थ ! इस भिनसार में ही
दीखते क्यों थके-हारे ?

और वह उत्तर देता है :—

वस्तुतः बन एक प्याला आज है
जग छलकना चाहता मधु-पर्व में

यही 'अश्रु-हास' का दर्शन है।

टी० एन० जे० कॉलेज
भागलपुर—७

माहेश्वरी सिंह 'महेश'
हिन्दी-विभाग

—अभिमत—

भारती के उपासना-कक्ष में 'अश्रुहास' का नवयुवक प्रणेता भी आया है, भावों की सुकोमल लड़ियाँ लेकर, हृदय में अपूर्व उत्साह और नूतन उमंग भरकर। उसके पैर प्रकंपित हो रहे हैं, किंतु उसे विश्वास है—उसके निष्कलुष भावोद्गार अवश्य ग्राह्य होंगे माँ भारती को—चाहे साधुवाद के मुखर स्वर से वह आप्लावित हो अथवा नहीं। यही है कवि की काव्य-प्रेरणा का मूलाधार।

अश्रु और हास, आनंद और अवसाद, हर्ष और विषाद ये ही जीवन के प्रमुख तत्त्व हैं। इन्हीं दोनों के अंतर्गत सभी मानवीय विकार सन्निविष्ट हैं। कवि ने अश्रुमयी भावनाओं और उल्लासमयी प्रेरणा से अपनी कविता का शृंगार किया है। उसने अपनी प्रणय-जन्य भावनाओं को—ताप-दग्ध उच्छ्वासों और पुलक-कंपित रागों को प्रमुखता प्रदान की है। वेदना का गीत हो अथवा उल्लास का संगीत, दैन्य-दुख-विषमता से प्रताड़ित प्रतिमा हो अथवा पावस-किरण-संध्या का आकर्षक चित्र—सर्वत्र कवि की निष्कपट एवं सरल व्यंजना परिलक्षित होती है। उसके मर्म की व्यथा की बाँसुरी जितनी मुखर है उतनी उल्लास की स्मिति को चाँदनी की प्रफुल्ल सुंदरता नहीं मिली है।

कवि-हृदय अभाव-जन्य वेदना से अत्यधिक प्रपीड़ित है। वह चिंतन-क्रम में अनुभव करता है, यदि पूर्व में ही उसे व्यथा की यह असहनीयता ज्ञात हो जाती तो वह आर्द्रा का सघन-श्यामल बादल बन कर चाँद को छुपा लेता जिससे—उसके साहचर्य-प्रतिफलित आह्लाद में किसी प्रकार का व्याघात नहीं पहुंचता।

मेघ आर्द्रा का सजल बन
चाँद को मैं छिपा लेती।

किंतु अब प्रियतम की मधुर स्मृति ही उसके जीवन का संबल बन गई है और आराध्य की प्राप्ति की अविश्रांत साधना ही लक्ष्य बन गई है जिसमें प्राप्त्याशा है, किंतु सम्मिलन का आवेगपूर्ण आह्लाद नहीं, जिसमें मिलन की समोत्सुक कामना है, किंतु संयोग का तीव्र पुलक-स्पंदन नहीं। अतएव कवि साध्य की मंगलस्मृति को अंतस्तल में अधिष्ठित कर, जुगनू के समान दीप जलाकर और सरिता की चपल तरंगों के समान लक्ष्य के सन्निकट पहुंचने के अविरत प्रयत्न में तन्मय रहना चाहता है।

जुगनू-सा ही दीप जला कर
ढूँढ़ूँ दिशा-दिशा में जाकर
सरित-वीचि-सम बढ़ूँ सतत, मत कूलों की पहचान मुझे दो!
प्रिय! मंगल सुधि-गान मुझे दो!

कवि ने प्रणय की रागिनी में अंतर की वीणा की झंकार को मिलाया है और वह युग-चेतना को भी विस्मृत नहीं कर सका है। इसलिए उस अकिंचन—जिसका जीवन अभावग्रस्त तथा जिसका यौवन शापग्रस्त है—का कंकाल उसके काव्य का आलंबन बन सका है।

पेट चिपका पीठ से है
हड्डियाँ—सूरत अजब ले,
दीखते अवयव सभी हैं
रक्त बिन ज्यों पत्र पीले।
'भूख !' कहता, हाय ! मन को 'भूख' में बहला रहा है !
कौन दिल दहला रहा है !

'अश्रुहास' में प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति रुझान की अभिव्यंजना भी यत्र-तत्र हुई है, किंतु ठोस धरातल की यथार्थता के सम्मुख, नवयुग की शिराओंमें प्रवाहित होनेवाली भावनाओं के आगे कवि जैसे चौंक-चौंक उठता है और वह उसमें तन्मय नहीं हो पाता। सौंदर्य-दर्शन की यह प्रवृत्ति विकसित होकर रमणीयता से पूर्ण संश्लिष्ट चित्रालेखन कर सकेगी जिसके कुछेक निदर्शन इस काव्य-पुस्तिका में विद्यमान हैं।

'अश्रुहास' के प्रणेता की विशेषता है—सरल स्वाभाविक अभिव्यक्ति। जिन अनुभूत भावों को उसने काव्य की लड़ियों में

गूँथा है वे हमारे हृदय को स्पर्श करने में सक्षम है। कल्पना और भाषा भी भावानुकूल हैं।

काव्य के त्रिविध तत्त्व—भाव, भाषा, और कल्पना-विकासोन्मुख हैं और वे एक दिन काव्य-प्रणेता को गौरव प्रदान करेंगे, यह निश्चय है।

बस इतना ही।

परिमल-कार्यालय,
पो० मल्लडीहा, पूर्णियाँ। } प्रताप साहित्यालंकार

दो शब्द—

'अश्रु-हास' में अश्रु अधिक हैं और हास कम। ये भी हास कहाँ से और कैसे आये ?—मैं नहीं कह सकता। मुझे तो केवल जलन की ही अभिव्यक्ति की बेचैनी परेशान किये हुए है। बहुत बार ताप को सह लेने की हिम्मत बाँधी—सत्य को लेकर बैठ जाने का इरादा किया किन्तु, असफल रहा। आखिर चीख 'अश्रु-हास' के रूप में निकल ही आई—दर्द पी कर मौन नहीं ही रह सका। 'अश्रु-हास' एक चीखमात्र है। इसलिए इसकी सजावट और मजावट के विषय में भी मैं नहीं कह सकता। यह जैसा है, जो है, सामने है।

मैं कवयित्री सुश्री इन्दुबाला, श्री प्रताप साहित्यालंकार, श्री सुधाशु जी और डाक्टर 'महेश' जी का अनुगृहीत हूँ। 'अश्रु-हास' को पुस्तकाकार देने के क्रम में इन्होंने अपने अमूल्य समय को लगा कर मेरा पथ-प्रदर्शन किया है। मैं अपने प्रारंभिक गुरु श्री जोगेन्द्र जी को भी नहीं भूल सकता। इनका उत्साह सदा-सर्वथा मेरे साथ रहा है। फिर साथी 'भ्रमर' रामेश्वर (सिहकुण्ड) और कैलाश को भी धन्यवाद है। 'अश्रु-हास' के प्रकाशन में इनकी कष्ट-सहिष्णुता और प्रयत्नशीलता श्लाघनीय है।

कुवाँड़ी
वसंत-पंचमी
संवत्—२०१० } महेश्वर प्रसाद सिंह

उपक्रमणिका

		पृष्ठ			पृष्ठ
१	अश्रु-हास	१	२१	ओल्हलिया, ओमतवाला	२६
२	याचना	२	२२	मधुमास	३०
३	संध्या	३	२३	गीत	३२
४	सुषमा की मुरली	५	२४	श्याम	३५
५	जिज्ञासा	६	२५	याद	३६
६	गीत	७	२६	हर्ष-विषाद	३७
७	आत्म-संगीत	६	२७	दीपावली	३८
८	मिलन-विछुड़न	११	२८	अनुरोध	३६
६	आह्वान	१२	२६	व्यवसाय	४०
१०	गीत	१३	३०	गीत	४१
११	किरण	१४	३१	कौन दिल दहला रहा है?	४२
१२	अन्वेषण	१६	३२	नव जागरण	४४
१३	गीत	१७	३३	प्रणय-निमंत्रण	४६
१४	सरले	१६	३४	उत्कर्ष की चोटी	४८
१५	प्रेयसि	२१	३५	आत्म-दाह	४६
१६	प्रियतमे	२२	३६	जा रहा उड़ता खग-अनजन !	५१
१७	सखि	२३			
१८	गीत	२५	३७	गीत	५३
१६	आनन्द-अवसाद	२७	३८	मुर्च्छन	५५
२०	परिचय	२८	३६	मधु-पर्व	५६

अश्रु-हास

किरणों समेट अस्ताचल पर
हा ! फूट-फूट रोता दिनकर !
सज उडु-दीपों से अन्तरिक्ष
होकर प्रफुल्ल हँसता हिमकर !

लो, बुझा त्वरित उन दीपों को
अब अश्रु बहा रोता हिमकर !
ले कमलों से मुस्कान नवल
फिर मुस्काता सज-धज दिनकर !

जब तक न तवा-सा तप जाता
रवि-कर से अचला का अंचल,
तब तक न जगत पा सकता रे
जीवनदायक जलकण निर्मल !

रे ! केवल आँसू या कि हास
जग को कर देता शुष्क, विरस ;
पर अश्रु-हास के मिश्रण से
है बना आज यह मधुर-सरस !

याचना

गरजते सारे क्षितिज पर
घोर घिर काले पयोधर,
चातकी-सी विकल खोले
त्रस्त भू निज व्यथित अन्तर!

कड़कती केवल बिजलियाँ
हो रहा क्यों सिर्फ गर्जन?
हाय! मुझको तज उदधि में
आज क्यों यह वेग वर्षण?

हूँ तृषित मैं युग-युगों से
और मत व्याकुल करो हे!
मुक्त बरसो सजल जलधर
प्यार से मुझको भरो हे!

संध्या

अस्ताचल को दिनमान चला,
उतरी अब, लो, शशि-किरण धवल ;
हैं तारे नभ में खेल रहे
धूमिल-धूमिल उज्ज्वल-उज्ज्वल !

ले पुष्प-गंध उन्मुक्त पवन
सुरभित कर गृह, गवाक्ष, तोरण
भरता उर में गुद-गुद कम्पन
है गाता कुछ सर-सर सन-सन !

लो, रजतोज्ज्वल सर में असंख्य
सकुचे मंजुल-मंजुल उत्पल ;
पर सस्मित-सस्मित मृदुल-मृदुल
हैं वहीं कुमुदिनी दल के दल !

जल रहे दीप क्रम-क्रम से, है
तुलसी-चौरा कैसा झलमल !
छू रहा धुआँ है नीलाम्बर
चूल्हे-चूल्हे से निकल-निकल !

लख दीप-दीप्त प्रासाद-कुटी से
चला भाग कुल अन्धकार ;
षोड़शी सेज सजती प्रिय की
उल्लसित हृदय से कर सिंगार !

सुषमा की मुरली

सुषमा की मुरली का मृदु रव किस अनन्त से आता है ?
द्रुत आ-आकर निकट-निकटतर ,
हृदय बीच मधु-ज्वाला भर कर ,—
कहाँ भागता जाता है !
सुषमा की मुरली का मृदु रव किस अनन्त से आता है ?

उड़ चल मेरे प्राण-विहग रे ,
संभवतः मिल जाये मग रे ,—
जो अनन्त को जाता है !
सुषमा की मुरली का मृदु रव किस अनन्त से आता है ?

उड़ते-उड़ते दूर लक्ष्य पर
पंख थके, मन शिथिल हाय, पर
मग क्यों बढ़ता जाता है !
सुषमा की मुरली का मृदु रव किस अनन्त से आता है ?

जिज्ञासा

सूने में कौन रुला जाता ?
उर-सागर के शत ज्वारों को चुपके से कौन जगा जाता।
सूने में कौन रुला जाता

संचित मेरी मुस्कान मधुर
लघु जीवन के अरमान मधुर
औ' स्वप्रविनिर्मित भव्य महल मिट्टी में कौन मिला जाता ?
सूने में कौन रुला जाता ?

क्यों मानस में भीषण हलचल
करती रह-रह व्याकुल पल-पल
यह कौन वेदना-आसव नित प्रति आकर हाय ! पिला जाता ?
सूने में कौन रुला जाता ?

गीत

गरज-बरस बीता असाढ़ भी
आया रिमझिम-रिमझिम सावन !

हरी चुनरिया कसमस-कसमस
चमक रही धरती रानी की,
शीराजी मदिरा पी मानो
विश्व-परी ज्यों दीवानी-सी
उमड़ रही कोने-कोने से
धार रूप-रस की मनभावन
हाय ! मगर फीके-फीके-से
फिर भी क्षण-क्षण, फिर भी लोचन,

जाने क्यों ये मेरे हित ही
घिरते आज विफल पावस-घन !

गरज-बरस बीता असाढ़ भी
आया रिमझिम-रिमझिम सावन !

अब न सकूँगा सह पल भर भी
ज्वालामुख की दाह विषम मैं,
अब न सकूँगा रोक, क्षुब्ध बहु
अन्तर में जो उदधि अगम हैं,
रहा मूक निष्प्राण शिला-सा
अपनी नीरवता में उन्मन,
हार चुका चुपके-चुपके कर
सूनेपन में आत्म-निवेदन;

रहा हाय! मैं सुनता केवल
बादल में सौ-सौ आवाहन!

गरज-बरस बीता असाढ़ भी
आया रिमझिम-रिमझिम सावन!

आत्म-संगीत

तिमिर निशा, विश्रब्ध-शान्त जग ,
तारों से आकाश जड़ा था ;
शीतल चपल समीरण सन-सन ,
गिरि का निर्जन प्रान्त बड़ा था ।

कल-कल छल-छल नदी एक थी
बहती विस्तृत गिरि-प्रान्तर में ;
पार बैठ उसके कोई, ले
वीणा गाती थी मृदु स्वर में !

सह न सका वह स्वर, व्याकुल-सा
खिंचा मुग्ध होकर मैं घर से ;
चला अकेला, दुर्गम पथ था
आवृत क्रूर जन्तु, प्रस्तर से ।

आया कलस्विनी के तट, तो
लगी न उसमें नाव कहीं थी;
बड़ा कठिन, उस पार हाय! मैं
जाऊँ कैसे? बुद्धि नहीं थी।

तभी लगा वह स्वर बढ़ता ज्यों
आया मेरी ओर निकटतर
और मस्त पागल-सा मैं भी
लगा वही गाने गुन-गुन कर!

मिलन-बिछुड़न

चान्दनी सँग चाँद प्रणयी
प्रणय-रत आकाश में;
कूकती मद-कोकिला
चहुँदिश पवन निःश्वास में !

अजब-सी उन्मादना प्रिय !
तृण, लता, तरु-पात में;
दूर——तुम से दूर मैं
ऐसी अनोखी रात में !

करूँ क्या कुछ वश नहीं
औ' क्या तुम्हीं से हो भला ?
काटते चकवा न चकई
उषा तक निशि की बला ?

आह्वान

कौन-सा आह्वान आया ?
जाग, चल रे ! ध्वनि सुनी, पर देह का न निशान पाया !
कौन-सा आह्वान आया ?

उफ ! चतुर्दिक तिमिरमय है,
शिथिल औ' कम्पित हृदय है,
जाग कर जाऊँ कहाँ, किसने मुझे आकर जगाया ?
कौन-सा आह्वान आया ?

राह मेरी दूर घर से,
मैं पुकारूँ उच्च स्वर से,
क्या कहूँ, किस देश-वासी ने मुझे भ्रम में भुलाया ?
कौन-सा आह्वान आया ?

गीत

आज कोई छिप हृदय में गीत सुन्दर गा रही है
वर्ष की सोई व्यथा को अग्नि-सी सुलगा रही है
वीणा के सुन तार झन-झन
और स्वर के मधुर कम्पन ;
हाय ! मेरी आँख उन्मन—
अश्रु फिर बरसा रही है !
आज कोई छिप हृदय में गीत सुन्दर गा रही है
वर्ष की सोई व्यथा को अग्नि-सी सुलगा रही है
जग गई वह कुल पुरानी
थी छिपी भी जो कहानी ;
किन्तु वह पागल बनाये—
खींचती अब जा रही है !
आज कोई छिप हृदय में गीत सुन्दर गा रही है
वर्ष की सोई व्यथा को अग्नि-सी सुलगा रही है

किरण

बाल सूर्य की नई किरण
ले आई यौवन का संदेश ;
नई चेतना कण-कण में, लो
चला भाग वसुधा का क्लेश !

चिन्तन-पथ का कुहा-जाल
जा रही दौड़ती चीर किरण
और साथ ही ज्योतिर्मय भव
क्षिप्र वेग करती मन्थन !

तन्द्रिल मानव ! नई किरण की
पकड़ डोर होकर गतिमान—
पहुँचो द्रुत उस रम्य राज्य में
पहुँच न सका जहाँ विज्ञान—

जहाँ न अवनी का कोलाहल ,
रूप दनुज का भीमाकार ,
जहाँ न कोई भेद-भाव, बस
जहाँ "तत्त्वमसि" का गुंजार !

अन्वेषण

अति पास-पास भी आ कर प्रिय
है मुझ से कितनी दूर-दूर !

अरुणा को बड़े सबेरे ही
उसने झकझोर जगाया है,
फिर अमर राग को बार-बार
खग-कलरव में दुहराया है !

करने उसकी ही अगवानी
नदियां दौड़ी जा रहीं विकल ;
लख रूप अनन्त उसी का ही
पर्वत हो रहा मूक, निश्चल !

पर हाय, उसे खोजते सतत
है तन-मन मेरा चूर-चूर !

अति पास-पास भी आ कर प्रिय
है मुझ से कितनी दूर-दूर !

गीत

प्रिय ! छिपा तू कहाँ अबतक ?

कह गया था फिरूँगा झट
ठहरना बस, एक-दो क्षण,
एक-दो क्षण कर गया
दिन, मास, ले, अब वर्ष नूतन

जोहती मैं बाट अपलक !
प्रिय ! छिपा तू कहाँ अबतक ?

जानती ऐसा सुभग ! तो
सच, तुझे जाने न देती
मेघ आर्द्रा का सजल बन
चाँद को मैं छिपा लेती

लखूँ तेरी बाट कबतक ?
प्रिय ! छिपा तू कहाँ अबतक ?

हाय ! जाभी सकूँ, पर
बढ़ते न ये लघु चरण मेरे
खींचते प्रतिपल यहाँ हैं
विकल कर ये स्मरण तेरे—

खींचता ज्यों सूचि चुम्बक !
प्रिय ! छिपा तू कहाँ अबतक ?

सरले

सरले ! तुम सुन्दर हो, या हो
सुन्दरता की साकार मूर्त्ति ?
सिरजा तुमको किस विधि ने री !
करने किस अभाव की पूर्त्ति ?

तुम कौन, यहाँ उद्दाम, अभय
निर्भीक विचरती वसुधा पर ?
निर्मम काँटे भी फुल्ल कुसुम
होते कैसे तव तन छूकर ?

तुम कौन, वेदना दूती-सी
मधु-ज्वाल जगाये फिरती हो ?
ऋषियों-सा भी दृढ़ हृदय बीच
कैसे पागलपन भरती हो ?

तुम मोह-विपिन की मधु-ऋतु-सी
हो कौन, जगत में आकर्षण ?
निज अमर प्रणय बल से कैसे
कर सकती क्षण में स्वर्ग सृजन ?

तुम कौन-कौन, जो मुनि मन भी
व्याकुल-विह्वल, अविचल-चंचल ?
अभिभूत सभी को कर सकती
लाई किससे यह शक्ति प्रवल ?

क्या स्वप्न-लोक से आई हो
दिखलाने को भू पर अचरज ?
या तुम "कबीर की ठगनी" हो
पाते न परख हम जीव महज ?

या तुम कवि की कल्पना-प्रिया
सज-धज सिंगार कर इतराती ?
निज पैनी चोखी चितवन से
धरती पर महा गजब ढाती ?

या सिंहवाहिनी दुर्गा तुम
या तुम ही जग जननी महान ?
सरले ! सचमुच में क्या हो तुम
हम खोज नहीं सकते निदान ?

प्रेयसि

प्रेयसि ! मैं फूला न समाता
लख कर तेरे रूप विमल ;
पर कैसी यह बात, विश्व क्यों
हुआ हाय ! सहसा पागल ?

लख कर तेरी चिकुर-राशि को
समझा कृषकों ने बादल
औ' समझा भौरों ने तेरे
नयनों को लखकर उत्पल !

अरी ! विहग-कुल ने क्या समझा ?
आनन को ऊषा चंचल ;
लगे गीत गाने स्वागत के
डालों पर हिलमिल कर कल !

समझाओ कुछ भी तो प्रेयसि !
जग ऐसा क्यों बौराया ?
या मैं ही हूँ भ्रम में भूला
समझ नहीं उनको पाया ?

प्रियतमे

प्रियतमे ! लख रूप तेरे
रूप दुनिया के लजाते,
लग रहे हर ओर सब ज्यों
रूप तेरे ही चुराते !

रूप में तेरे स्वतः भी
प्रियतमे ! मैं खो रहा हूँ ;
रूप ज्यों अपना न मेरा
एक मिल कर हो रहा हूँ।

सच, तनिक संशय न इसमें
रूप का भण्डार है तू
रूप-लोलुप सरस प्रिय के
प्राण का आधार है तू !

सखि

सखि ! सुन्दर-सुन्दर-सुन्दर
सचमुच, कितनी सुन्दर हो ;
लगती है यह सुन्दरता
ज्यों नयन-प्यास का घर हो ।

सखि ! चन्द्रमुखी रजनी ज्यों
तारकमय नीले पट में
त्यों हो तुम चित्रित, उड़ती
साड़ी की अकुलाहट में !

सखि ! मदिरा पी पगली-सी
वेसुध यौवन की मस्ती
बूढ़े, निरीह-निर्बल पर
अति तीक्ष्ण व्यंग्य है कसती !

पर लो, उफ ! युवक हृदय में
उठ रहे बवण्डर भीषण,
मुद गये अचानक उनके
पल में विवेक के लोचन !

क्या इस सुन्दरता में सखि !
तुम सब दिन सदा अमर हो ?
सखि ! सुन्दर-सुन्दर-सुन्दर
सचमुच, कितनी सुन्दर हो !

गीत

सजनि ! हम तुम में भुलाये !

साँझ छवि की मूर्त्त प्रतिमा
सदृश तन सुकुमार लेकर,
पास जब आई हमारे
रम्य सरिता के पुलिन पर,
लगी तो पहले सुपरिचित
फिर लगी भूली हुई-सी,
चकित-विस्मित सोचते हम
अरे ! है यह याद किसकी ?
याद सहसा आ गई सखि ! साथ हम दोनों मगनमन
हैं अमल आनन्द-गंगा में कभी मिल कर नहाये !
सजनि ! हम तुम में भुलाये !

घड़ी थी कैसी सुमंगल
भाव थे क्या-क्या हृदय में,
थी बिठाई जब हमें निज
प्रेम के मधुमय निलय में?
और, जब चुपके दृगों से
वेदना कर गई अर्पण
बन गया तब प्राण पागल
हो गया उन्मत्त जीवन!
आज फिर सुरभित सुकोमल अङ्ग के वे चपल अवयव
रूप-पूनम-मधुरिमा में सुनहले सपने बिछाये!
सजनि! हम तुम में भुलाये!

आनन्द-अवसाद

फैली है यह पौष-शर्वरी
छाया है हिम-हास, प्रिये
दिन के भीषण कोलाहल का
कहीं न है आभास, प्रिये

चहक रही चान्दनी चतुर्दिक
चारु चन्द्र का राज, प्रिये
सोया घर-घर सुख-निद्रा में
शान्त समस्त समाज, प्रिये

मुझे नींद है आज कहाँ ?
लगता है जीवन भार, प्रिये
हाय ! अकेला पिरो रहा
रो-रो मैं आँसू-हार प्रिये

जब-जब छूती तन आ-आ
बर्फानी मन्द बयार, प्रिये
तब-तब सुध-बुध खोकर मैं
गिर पड़ता गगन निहार, प्रिये

परिचय

जग गाता, हँसता, सुख पाता,
आनन्द मनाता निशि-वासर;
हा ! एक अभागा मैं ही हूँ
जो तड़प रहा इस धरती पर !

मैं जग की आँख बचा चुपके
निर्जन में जाया करता हूँ;
मन ही मन तिल-तिल घुल-घुल कर
जी भर-भर रोया करता हूँ !

रोता पर आग न बुझ पाती
दूनी हो कर धुधुआती है;
मानूँ कैसे मैं रोने से
कुछ शान्ति हृदय में आती है ?

मर गया, नहीं कुछ देख रहा
हूँ, है अब मेरे पास रहा;
बस, आँसू ही सर्वस्व एक
आकुल जीवन की आश रहा !

ओ छलिया, ओ मतवाला !

आये थे कब उर-कानन में
चुनने को अनुराग-कुसुम ?
बड़े छली हो, चले गये क्यों
दबे पाँव, चुप-चुप, गुम-सुम ?

चरण-चिह्न मग पर अंकित जो
वे अब मुझे सताते हैं,
व्रण-व्रण पर अति निर्दयता से
नमक हाय ! छिड़काते हैं !

असहनीय हो गई बड़ी ही
इस दारुण दुख की ज्वाला ;
क्या पाते हो तड़पाने में
ओ छलिया, ओ मतवाला !

मधुमास

आ गये मधुमास के प्रिय, प्रियतमा दिन, रात री !
पल्लवों की ओट छिप
ले पुष्पधन्वा बाण को
वेधने उद्भ्रान्त, उद्यत
है जगत के प्राण को !
दिग्विदिग से वेदना-सी उमड़ती अज्ञात री !
आ गये मधुमास के प्रिय, प्रियतमा दिन-रात री !

साज नव शृङ्गार वसुधा
निरखती आकाश में
विकल-सी जाने न किसका
पन्थ है किस आश में !
रूप की मधु चाँदनी में जग सुधा से स्नात री !
आ गये मधुमास के प्रिय, प्रियतमा दिन, रात री !

पुलक-कम्पित प्रणय के
भुज-पाश में कसता हुआ
शुष्क, नीरस विश्व पर ज्यों
व्यंग्य से हँसता हुआ—
पूछता प्रिय प्रियतमा से मृदु-मधुर कुछ बात री !
आ गये मधुमास के प्रिय, प्रियतमा दिन, रात री !

गीत

लगता क्यों मधु-ऋतु में ही मन
पतझड़ की कोयल-सा उदास ?

वासंती की शोभा अपार
छू रही हृदय को बार-बार ;
पर हाय, हृदय उन्मन-उन्मन
निज वीणा के कुल तोड़ तार—

आँसू में पल-प्रतिपल-प्रतिपल
है ढल-ढल पिघल-पिघल गल-गल
चाहता निकलना अनायास !

लगता क्यों मधु-ऋतु में ही मन
पतझड़ की कोयल-सा उदास ?

भरने जीवन में मधुर प्यार
तितली-बाला, मधुकर-कुमार,
ले कर पराग कोमल बयार
औ' पंछी का मोहक सितार—

सब नृत्य शील चंचल-चंचल
नित नूतन-नूतन बदल-बदल
आते, पर कर जाते निराश !

लगता क्यों मधु-ऋतु में ही मन
पतझड़ की कोयल-सा उदास ?

क्या प्रिय का ही निष्ठुर अभाव
रम रहा आज बन सूनापन ?
बस, इसीलिये सुन्दर, सुखकर
आनन्द प्रकृति का भव्य भवन

ज्यों ध्वस्त-त्रस्त औ' जीर्ण-शीर्ण
चिर शून्य-शून्य अति छिन्न-भिन्न
हो रहा हाय ! यम का निवास ?

लगता क्यों मधु-ऋतु में ही मन
पतझड़ की कोयल-सा उदास ?

श्याम

छिपे सखि ! झुरमुट में प्रिय श्याम !
गूँजते नहीं खगों के बोल, बोलती वंशी मधुर ललाम !
छिपे सखि ! झुरमुट में प्रिय श्याम !

अरी ! वह खेत चौभुजाकार
हरी आभा का जहाँ प्रसार
वहीं से सब को बारम्बार
श्याम सखि ! कब से रहे पुकार !
वृथा क्यों रहीं ढूँढ़ हम हाय ! दग्ध-मन उनको आठों याम !
छिपे सखि ! झुरमुट में प्रिय श्याम !

छिटक कर भू से दूर—सुदूर
ठगा बादल बन हमें जरूर
मगर वे निर्मोही—वे क्रूर
मान अब अपना सभी कसूर
स्यात् री! पास-पास ही पहुँच दिखाते छवि मोहक, अभिराम !
छिपे सखि ! झुरमुट में प्रिय श्याम !

याद

फिर असाढ़ी घन घुमड़
पागल बनाते मन हमारे,
सामने सज-धज खड़े हैं
बस, वही निशि-दृश्य सारे !

दामिनी जब सघन घन का
खोल घूँघट मुस्कुराती,
याद सहसा सुभग ! तेरी
हमें तब रह-रह सताती !

भटकता जब गहन तम में
जला जुगनू दीप चंचल,
हाय ! तब जाने न क्यों
दृग से बरसता अश्रु अविरल !

और, जब छूता हमारा
तन मृदुल शीतल समीरण,
आह ! तब आश्लेष करने
तड़प उठता है विकल मन !

हर्ष-विषाद

आज विहसतीं सकल दिशाएँ
हँसते घन लख मोर प्रिये
अम्बर में आनन्द पगा, है
हर्षित पवन झकोर प्रिये

रजनी की यह मस्त घड़ी औ'
कैसा मङ्गल मोद प्रिये
सारी दुनिया क्रीड़ा करती
है निद्रा की गोद प्रिये

कभी-कभी हिल-मिल दादुरगण
कर उठते हैं शोर प्रिये
प्रमुदित और उल्लसित वे भी
थे जो परम कठोर प्रिये

केवल एक जलज रोता औ'
चकई बनी उदास प्रिये
हाय निठुर परदेश-रात
लेता मैं भी निश्वास प्रिये

दीपावली

जगमग अमा के पर्व में
संध्या शरद् की हँस रही !

लो, दिग्वधू भी आज अपने
खोल घूँघट लाज के,
चल नृत्य में बेसुध-मगन
हैं स्नेह-दीपक साज के !
छू सत्य जीवन का, अमल
श्वासा-समीरण चल रहा ;
कर छिन्न माया प्रकृति की
चिर-सत्य-दीपक जल रहा !

यह ज्योति - सुषमा कौन—
जिस पर खिंच रही बरबस मही ?
जगमग अमा के पर्व में
संध्या शरद् की हँस रही !

अनुरोध

प्रिय! मङ्गल सुधि-गान मुझे दो

घिर आवे नयनों में बादल
कौंधे विरह-दामिनी प्रतिपल
निर्झरणी के अन्तर की चिर आकुलता का दान मुझे दो!
प्रिय! मङ्गल सुधि-गान मुझे दो

जुगनू-सा ही दीप जला कर
ढूँढ़ूँ दिशा-दिशा में जा कर
सरित-वीचि-सम बढ़ूँ सतत, मत कूलों की पहचान मुझे दो!
प्रिय! मङ्गल सुधि-गान मुझे दो

मिलन-लालसा का यह उद्यम
हो न जाय इससे कुछ भी कम
कहीं बजाओ वेणु किन्तु, स्वर-कम्पन का ही भान मुझे दो!
प्रिय! मङ्गल सुधि-गान मुझे दो

व्यवसाय

हास मेरा आज है ज्यों
खंडहर पर चाँदनी का ;
अश्रु-मुक्ता उष्ण मरु पर
ओस ज्यों मधु-यामिनी का।

कुसुम - सौरभ - रभस - सा
कहता मलय जीवन तुम्हारा ;
बात सुन यह व्यंग्य कसता
नील नभ से चपल तारा।

फिर सुनाता रिंद, गिरेंगे
प्राण तेरे बूँद-सी मम ;
चञ्चला लज्जावनत
तृण लाजवन्ती-सी परम।

देख यों लीला जगत की
दूर बैठा आज उन्मन ,—
निरखता व्यवसाय जग का
ले द्रवित, करुणाभ लोचन !

गीत

अगम सागर में अकेला आज बहता जा रहा हूँ!
सामने आती प्रलय ले
समय की इक-इक घड़ी है;
खा थपेड़ा डोलती—
ऊँची तरङ्गों पर तरी है!
विलग कर-पतवार मेरी
औ' सलिल भर नाव भारी
हाय! लख यह जटिल उलझन बन विकल चिल्ला रहा हूँ!
अगम सागर में अकेला आज बहता जा रहा हूँ!
अयि तरङ्गो! शान्त हो अब
हो अजय, हूँ मानता मैं;
की तरी बर्बाद तुमने—
लाख, यह भी जानता मैं!
दो लगा उस पार मुझको
दूँ हृदय से दुआ तुझको
चढ़ लहर पर तीव्र गति से 'पार' ढूँढ़े आ रहा हूँ!
अगम सागर में अकेला आज बहता जा रहा हूँ!

———

कौन दिल दहला रहा है ?

कौन दिल दहला रहा है ?

चल रहा सन-सन पवन, है
सुप्त जग, सुन-सान बेला ;
लड़खड़ाते पाँव, पर फिर
जा रहा पथ पर अकेला ;
भूख कह-कह अश्रु से, इस भूमि को नहला रहा है
कौन दिल दहला रहा है ?

पेट चिपका पीठ से है
हड्डियाँ - सूरत अजब ले ;
दीखते अवयव सभी हैं
रक्त बिन ज्यों पत्र पीले ;
'भूख !' कहता, हाय ! मन को भूख में बहला रहा है !
कौन दिल दहला रहा है ?

दैव ! हा, पूछूँ उसे क्या ?
लुट रहे जीवन, जवानी ;
कौन सुनता जो सुनाऊँ
आज मैं उसकी कहानी ;
सिसकता, तलवा किसी का अहर्निश सहला रहा है !
कौन दिल दहला रहा है ?

नव जागरण

नवल प्रभात आ गया लिये नवीन जागरण !
पुनः उजाड़ में अहा !
विहँस रहा वसंत है,
हुलास से भरा हुआ
समस्त दिग-दिगन्त है !
उठा क्षितिज से झाँकती उषा गहन तमावरण !
नवल प्रभात आ गया लिये नवीन जागरण !

प्राण-प्राण में अपार
जोश औ' उमङ्ग है,
अशोक-सिन्धु में उतुंग
उठ रही तरङ्ग है !
नवीन साथ-साथ मिल सभी बढ़ा रहे चरण !
नवल प्रभात आ गया लिये नवीन जागरण !

युगों प्रसुप्त विश्व के
समक्ष हैं जवानियाँ,
सुना-सुना हमें सबल
अतीत की कहानियाँ—
बता रहीं बढ़े चलो, हमें प्रवीर कर वरण
नवल प्रभात आ गया लिये नवीन जागरण

प्रणय-निमंत्रण

नीलाभ व्योम की तारों से चित्रित साड़ी में
चन्द्रमुखी निशि मन्द-मन्द मुस्कुरा रही,
जिसके कसमस, महमह यौवन में,
व्याकुलता-सी, विह्वलता-सी मचा रहा रे—
सौ-सौ मादक प्रणय-निमन्त्रण !
यह व्याकुलता, यह विह्वलता,
शीतल, स्निग्ध पवन-पंखों पर,
उड़ती-उड़ती जब-जब आकर,
छू देती दुख-दैन्य-ज्वाल से झुलसे जग के दग्ध प्राण को ,
जग तब मानो आह एक गीली-सी भर कर मौन,—
न कुछ भी कह पाता है
जैसे कैदी मन की साध लिये मनमें ही
हाय ! तड़प कर रह जाता है !

+ + +

हाय, धन्य वह धन्य जमाना !
कभी कृष्ण "पीतम" थे भू पर,
कभी "रास की मुरली" के स्वर
रात-रात भर—
फूलों की मोहक छाया में
रह-रह कर उठते पुकार,
रे कभी गोपियों के उर में
थे "बहते पावस के पनार !"
जग देख चुका—सब भूल चुका,
हाँ, भूल चुका इसलिये कि अब तो पेट हृदय को निगल रहा है !
हाय ! भला फिर प्रणय-निमंत्रण ?
कसमस यौवन का आकर्षण ?
मधुमय आलिङ्गन का कम्पन ?
नहीं सुहाता नहीं-नहीं रे !
हाय ! अरी ओ चन्द्रमुखी !
क्या आज प्रणय के परिणय में कुछ रंग आयेगा ?
सोच समझ लो !

उत्कर्ष की चोटी

बड़ी उत्कर्ष की चोटी खड़ी, मुश्किल, चढ़ूँ कैसे ?
पकड़ते वासनाओं के बड़े विषधर, बढ़ूँ कैसे ?
बिलखता, चीखता पर हाय ! इनसे छुट सकूँ कैसे ?
बढ़ावा भी नहीं व्यवसाय में फिर जुट सकूँ कैसे ?
भला अभिशाप के पुतले कहाँ से जोश का वर दें ?
नहीं कोई कहीं ऐसा कि संकट में मदद कर दें !
महा पापी, कुटिल, खल का विकट परिणाम पाने को,
चली धरणी उदधि में देख, असमय ही समाने को !
कहाँ हो नियति के ओ देवता ! निज आँख तो खोलो,
पड़ी है विपत भारी सान्त्वना के शब्द दो बोलो।
अरे ! उत्कर्ष की चोटी नहीं क्या देख पाऊँगा ?
नहीं दमतोड़ती-सी मनुजता को फिर जिलाऊँगा ?
नहीं शृङ्गार इसका अब हृदय में हर्ष फिर देगा ?
विधाता ! सत्य, सागर हाय ! इसको निगल ही लेगा ?

आत्म-दाह

हृदय को मस्तिष्क ने जब
अलग कर दुनिया बसाई,
आग भीषण दहकती
तब से धरा पर फैल आई।
आह! तब से चल रही
धू-धू चतुर्दिक लपट खरतर,
दाह से अकुला रहे
विस्मित-चकित मानव निरन्तर।
लाख नित नव हो रहे
सुख-भोग के उपकरण संचय,
फिर जलन, तृष्णा? न पाती
बात हो यह कभी निश्चय।
हाय! जितना हो रहा
मस्तिष्क द्युति से जगत द्योतित,
और उतना छिपा भीतर
देवता भय से प्रकंपित,

और उतनी जा रही
बनती महा दुर्दान्त बेला,
भासता प्रतिपल कि जैसे
बज्र टूटेगा विषैला!
ओह! जीवित, सदय, सुन्दर
मनुज का कुछ वश न चलता,
क्रूर यान्त्रिक नर उसे जब
दैत्य-सा सीधे निगलता।
बहुत अब, जैसे बने
मस्तिष्क से हम आज बोलें,
बाँध लें, इससे न आगे
"ज्ञान-गठरी" तनिक खोलें।
ठीक हम बर्बर मनुज ही
प्रेम से यदि साथ जीयें,
औ' विचारों की न असि धर
बन्धु का यदि खून पीयें!

जा रहा उड़ता खग अनजान !

क्षितिज के पार—नियति की ओर
जा रहा उड़ता खग अनजान !

हृदय में भर उत्साह, उमङ्ग
हृदय में ले आशा, उल्लास
और पंखों में अपने बाँध
व्याप्त, फैला, अनन्त आकाश—

क्षितिज के पार—नियति की ओर
जा रहा उड़ता खग अनजान !

सामने महा प्रलय का मेघ
सामने बिजली औ' तूफान
मगर अपनी गति में निर्भीक
बनाये अचल-सुदृढ़ मन-प्राण—

क्षितिज के पार—नियति की ओर
जा रहा उड़ता खग अनजान !

नहीं क्या यह अल्हड़, नादान ?
नहीं क्या यह उसका अभिमान ?
भला पायेगा कैसे पहुँच
गया जब भूल पन्थ का ज्ञान ? —

क्षितिज के पार—नियति की ओर
जा रहा उड़ता खग अनजान !

गीत

पूछते दो-चार तारे

पूछते दो-चार तारे
नील नभ से कर इशारे
पान्थ ! इस भिनसार में ही दीखते क्यों थके-हारे ?
पूछते दो-चार तारे

शेष जब योंही पड़ा दिन
रहे क्यों मग-दूरियाँ गिन
नहीं क्या तुम जानते चलना छिपे बल के सहारे ?
पूछते दो-चार तारे

धैर्य, हिम्मत-से छिपे दो
मनुज में बल चिर नये जो
परख औ' चल, पान्थ ! क्यों बैठे, कहो, उनको बिसारे ?
पूछते दो-चार तारे

लक्ष्य तो अति ही निकट है
मग न कुछ बीहड़-विकट है
नहीं क्या मग-कल्पना तब दे रही है भय वृथा रे?
पूछते दो-चार तारे

मूर्च्छन

बजी नव रश्मि की वीणा
तिमिर की कुलिश कारा में;
गई मधु-रागिनी छितरा
मधु र झंकार-धारा में !

हुए सब रोम पुलकाकुल ;
हुआ मन-प्राण बेसुध-सा ;
सकल खो ज्ञान को अपने
गया चैतन्य सो-अलसा !

ढुलक कर अश्रु का मोती
गुलाबी गाल पर आया ;
इसी निस्पन्दता में, सच ,
शुभे ! तुमको निरख पाया !

मधु-पर्व

उषा-जननी लिये मधुमय अंक में
रही बहला कमल-कर-संकेत से
दिखा मोती शबनमों के दूब पर
किलकते अति फुल्लचित शिशु-प्रात को।

प्रकृति का संगीत आलय ध्वनित है
पक्षियों के विविध मोहक गान से
सुकोमल शीतल अनिल अजनबी-सा
पूछता जा द्वार परिचय कुसुम का।

बाल तितली का परागों में नहा
इन्द्रधनुषी पंख में है विचरता
और, मधुप-कुमार गुंजन-निरत है
उर्मियों की मधुरतम लय-तान में।

बौर की हो गंध से ज्यों अंध-सा
पल्लवों में छिपा पिक कल कंठ से—
चतुर्दिक धुन में पगा बरसा रहा
अजब-सी है वेदना—उन्मादना ।

वस्तुतः वन एक प्याला आज है
जग छलकना चाहता मधु-पर्व में
नियति-साकी मदिर कर में ले जिसे
आ रही मदहोश-सी, बेहोश-सी ।